वेदों में प्रधान देवता- अग्नि देव

देवेन्द्र सिंह मोछाल

अग्निदेवता यज्ञ के प्रधान अङ्ग है। ये सर्वत्र प्रकाश करने वाले तथा उभा प्रदान करने वाले एवं सभी पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले है। यज्ञों में जो होता आदि ऋत्विज् होते हैं, वे अग्निदेवता ही है। सभी रत्न अग्नि से उत्पन्न होते हैं और सभी रत्नों को यही धारण करते हैं। शाक्यूणि नामक निरुक्ताचार्य ने सर्वप्रथम अग्नि शब्द की तीन धातुओं से निरुक्ति की थी। इसकी धातु 'अञ्ज' है जो प्रकाश-अर्थ में है। दूसरी धातु 'दह' है जो जलाने के अर्थ में है। जिसमें 'ह' का गकार हो गया है। तीसरी धातु है 'नी' जिसका अर्थ है नयन करना, नेतृत्व करना। इस प्रकार अग्निदेवता दाह, प्रकाश और यज्ञ के भागों को नयन करने के कारण ही अपने अनुगुण नाम वाले प्रसिद्ध हैं।

वेदों में सर्वप्रथम ऋग्वेद का नाम आता है प्रथम शब्द 'अग्नि' ही प्राप्त होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि विश्व-साहित्य का प्रथम शब्द 'अग्नि ही है। ऐतरेय आदि ब्राह्मण ग्रंथों में यह बार-बार कहा गया है कि देवताओं में प्रथम स्थान अग्नि का है और विष्णु का स्थान सबसे अन्त में या चरम एवं परम है-

'अग्निर्वै देवानां प्रथमः विष्णुः परमः ।'

आचार्य यास्क एवं सायणाचार्य ऋग्वेद के प्रारम्भ में अग्नि की स्तुति का कारण यह बतलाते है कि अग्नि देवताओं में अग्रणी हैं और सबसे आगे-आगे चलते हैं, युद्ध में सेनापति का काम करते हैं, इन्हीं को आगे कर युद्ध करके देवताओं ने असुरों को परास्त कर दिया था।

नियुक्त के रचयिता महर्षि यास्क के अनुसार 'अग्नि' आद्य- स्थान या पृथ्वी-स्थान के सर्वप्रथम एवं सर्वमान्य देवता है। इसके आगे दैवतकाण्ड के सातवें अध्याय के तीसरे खण्ड में अग्निदेवता के भक्ति-साहचर्य में उनके परिकरों का उल्लेख करते हुए यास्क ने कहा है कि अग्नि पृथ्वी-स्थान से सम्बद्ध इस लोक तथा प्रातःसवन नामक सोम-संस्था से सम्बद्ध है। इनका ऋतु वसन्त कहा गया है। ये गायत्री छन्द, त्रिविध स्तोम और रथन्तर सामद्वारा उपगीत किये जाते हैं। पृथ्वी-स्थान के जितने भी देवता कहे गये हैं- जैसे आप्रीगण, ग्रावाण एवं अभिषव- ये सब इनके सहचर हैं और

देवताओं में आग्नायी इनकी पत्नी हैं। पुराणों के अनुसार इनकी पत्नी स्वाहा है तथा पृथ्वी एवं इलादेवी भी इनके भक्ति-साहचर्य के अन्तर्गत आती हैं। ये सभी देवता अग्निदेवता के भक्ति-साहचर्य के अन्तर्गत आते हैं। ये सब देवताओं के मुख हैं और इनमें आहुतियों एवं हविष् आदि को डालकर इनके द्वारा संवाहित होकर देवताओं के भाग उनके पास पहुँचते हैं। यही सब देवताओं के भाग को पहुँचाते हैं। इन्द्र, सोम, वरुण, पर्जन्य तथा ऋतुएँ इनके साथ संस्तुत एवं प्रार्थित होते हैं और प्रायः इनके साथ सम्बद्ध रहते हैं। केवल ऋग्वेद में अग्नि के दो सौ सकल सूक्त प्रात होते हैं। और प्रायः दो सौ और सूक्तों में इनकी छिटफुट स्तुतियाँ मिलती हैं तथा अन्य देवों के साथ भी इनकी स्तुतियाँ की गयी हैं। इसी प्रकार यजुः, साम और अथर्ववेद में भी अनेक सूक्तों एवं ऋचाओं में इनकी स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। ऋग्वेद के प्रथम सूक्त में अग्नि की प्रार्थना करते हुए विश्वामित्र के पुत्र मधुच्छन्दा ऋषि कहते हैं कि मैं सर्वप्रथम अग्निदेवता की ही स्तुति करता हूँ, जो सभी यज्ञों के पुरोहित कहे गये हैं। पुरोहित राजा का सर्वप्रधान आचार्य होता है और वह उसके समस्त अभीष्टों को सिद्ध करता है। इसी प्रकार अग्नि देवता भी आहुतियों को पहुँचाकर देवताओं के और देवताओं के द्वारा यजमान के सभी अभीष्ट कामनाओं को पूर्ण करवाते हैं।

अग्नि को देवता इसलिये कहा गया है कि ये दान करते दीपन करते हैं और द्योतन या सर्वत्र प्रकाश करते हैं। द्युस्थान या स्वर्गलोक में निवास करते हैं, इसलिये इन्हें देवता कहा जाता है-

देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा, देवः सा देवता।

अग्निदेव की प्रार्थना बहुत पहले भी भृगु, अङ्गिरा आदि ऋषियों ने की थी और इस समय या वर्तमान समय के भी ऋषि-महर्षि अग्निदेवता की स्तुति करते हैं। वही सभी देवताओं को हविष् प्राप्त कराते हैं। अग्नि की प्रार्थना से यजमान धान्य, पशु आदि समृद्धि को प्राप्त करता है। प्रतिदिन उसकी शक्ति, प्रतिष्ठा, आयु, पुत्र, परिवार आदि की वृद्धि होती है। इसके बाद जब अग्नि प्रत्यक्षरूप से प्रकट हो गये तब उनकी प्रत्यक्षरूप से स्तुति करने लगे, वे कहते है कि हे अग्निदेव आप पूरे यज्ञकुण्ड में व्याप्त हो गये हैं और यह हविष् सभी देवताओं को तृप्त करता हुआ स्वर्ग पहुँचता है। आप पूर्वदिशा से लेकर उत्तरदिशा तक चारों दिशाओं में मार्जालीय, गार्हपत्य, आग्नीध्र रूपों में स्थित है।अब यहां कोई भी राक्षस या यमलोक के प्राणी बाधा देने के लिये नहीं आ सकते। वे किसी की हिंसा नहीं कर सकते। आप सभी हविष्य ग्रहण करने वाले देवताओं के साथ यहां पधारे हुए हैं और आप भूत,भविष्य ,वर्तमान सभी को जानते है। आपकी कीर्ति समूचे संसार में व्याप्त है। हे अग्निदेव आप यज्ञ करने वाले को धन-धान्य, गृह, क्षेत्र, उद्यान,स्त्री-पुत्र और गौ, अश्व, महिष-महिषी, हस्ती आदि पशुओ को प्रदान कर परम कल्याण करते हैं। हमलोग यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले

अपनी बुद्धि से आपकी स्तुति करते है और समय-समय पर आहुति भी देते हैं। आप हम लोगों को उचित फल प्रदान कीजिये, जैसे पिता अपने पुत्र की रक्षा करता हुआ सभी प्रकार का कल्याण करता है, वैसे आप भी कृपा पूर्वक हमारी रक्षा करते हुए हमारे सभी श्रेयों की रक्षा कीजिये।

अग्निदेव का स्वरूप-निरूपण

कर्मकाण्ड-प्रन्थों में तथा मूल वैदिक संहिताओ में भी जो अग्निदेव के स्वरुप का वर्णन किया गया है, उसमे उसका रंग सर्वथा लाल या रक्त-पीत-वर्णमिश्रित बताया गया है। यास्कीय निरुक्त (१३/७) तथा ऋग्वेदसंहिता (४/५८/३) के भाष्यों के अनुसार चारों वेद ही अग्निदेव के श्रृङ्स्वरूप हैं और प्रातः, मध्याह्न और सायं सवनरूपी तीन सोमयज्ञ के अङ्ग इनके पैर हैं। सारण के अनुसार ब्रम्होदन एवं प्रवर्ग्य नाम की दो इष्टियां इनके सिर या शीर्ष स्थानीय है तथा यास्क के अनुसार प्रायणीय और उदयनीय-ये इनके दो सिर है। गायत्री आदि सातों छन्द इनके सात हाथ है और मन्त्र, ब्राह्मण, सूत्र (कर्मकाण्ड) ये तीन नियमों से बंधे हुए है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी फलों की वृष्टि करते हैं। ऋग्, यजु, साम आदि वेदों से मुखरित होते हैं तथा महानुभावात्मक देवता यजमानों के द्वारा यज्ञ-विधान से उपचर्चित एवं उपासित होते हैं।

ऋग्वेद के अनुसार उनका मुख एवं पृष्ठ नवनीत से लिप्त है तथा उनके दाँत अत्यन्त चमकीले और उनकी दाढ़ी सुवर्ण- वर्ण की है।

भगवान् अग्निदेव की सात जिह्वाएँ बतायी गयी हैं। तदनुसार रूप और गुणों के अनुसार उन जिह्वाओं के नाम इस प्रकार हैं-१-काली, २-कराली, ३-मनोजवा, ४-सुलोहिता, ५-धूमवर्णा, ६-स्फुलिङ्गिनी तथा ७-विश्वरुचि।

पुराणों के अनुसार अग्निदेव की पत्नी स्वाहा के पावक (दक्षिणाग्नि), पवमान (गार्हपत्य) और शुचि (आहवनीय) नामक तीन पुत्र हुए (भागवत ४/१/६०)। इनके पुत्र- पौत्रों की संख्या उनचास है। भगवान् कार्तिकेय को अग्निदेवता का भी पुत्र माना जाता है तथा पुराणों के अनुसार स्वारोचिष नामके द्वितीय मनु भी इनके पुत्र कहे गये हैं।

अग्निदेव अष्टलोकपालों तथा दस दिक्पालों में द्वितीय स्थान में परिगणित हैं। ये आग्नेयकोण के अधिपति हैं। अग्नि अथवा आग्नेय नामक प्रसिद्ध महापुराण के ये ही वक्ता है, जिसमें मुख्यरूप से वेदविधान, कर्मकाण्ड, धनुर्वेद, आयुर्वेद आदि उपवेदों के साथ ही धर्म, दर्शन, राजनीति एवं वेदाङ्गों का भी विस्तार से निरूपण हुआ है। प्रभास क्षेत्र में सरस्वती नदी के तट पर इनका मुख्य तीर्थ है जिसके समीप भगवान् कार्तिकेय, श्राद्धदेव तथा गौओं के भी तीर्थ हैं।

अग्निदेवता का बीज मन्त्र **'रं'** तथा मुख्य मन्त्र **'रं वह्निचैतन्याय नमः'** है।

ध्यान एवं नमस्कार-मन्त्र

प्रपञ्चसार, शारदातिलक तथा श्रीविद्यार्णव आदि तन्त्र-ग्रन्थों में उनके ध्यान एवं नमस्कार के कई मन्त्र मिलते हैं जिनका आशय प्रायः समान ही है। यहाँ शारदातिलक के कुछ ध्यान उद्धृत किये जाते हैं-

इष्टं शक्तिं स्वस्तिकाभीतिमुच्चै - दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं जवाभम्।
हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं , ध्यायेद्वह्निं बद्धमौलिं जटाभिः ॥

'अग्निदेव अपनी बड़ी-बड़ी चार भुजाओं में क्रमशः वरमुद्रा, अभयमुद्रा, शक्ति एवं स्वस्तिक को धारण किये हुए हैं। इनके तीन नेत्र हैं और शिरोभाग में जटाएँ सुशोभित है। ये कमल के आसन पर विराजमान हैं तथा इनकी कान्ति जपा पुष्प के समान लाल है।'

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् ॥

'मैं जाज्वल्यमान अग्निदेव की वन्दना कर रहा हूँ, जो धन-धान्य को देने वाले हैं तथा समस्त देवताओं के हविर्भाग को यथास्थान पहुँचा देते हैं। इनकी कान्ति प्रज्वलित स्वर्ण की सी है तथा इनकी ज्वालाएँ दशों दिशाओं में व्याप्त हैं। ये पूर्ण रूपसे अपने तेजोमय रूप में स्थित हैं।'